श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

श्रीमद्भागवत रामायण स्तोत्र (9.10)

धरा हुई धन्य,व्याप्त हुआ आह्लाद
नारायण अवतारों पर,ब्रह्मा नारद संवाद

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
नवमः(स्) स्कन्धः
अथ दशमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

खट्वां(ङ्)गाद् दीर्घबाहुश्च, रघुस्तस्मात् पृथुश्रवाः ।
अजस्ततो महाराजस्- तस्माद् दशरथोऽभवत् ॥ 1॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! खट्वाङ्ग के पुत्र दीर्घबाहु और दीर्घबाहु के परम यशस्वी पुत्र रघु हुए। रघु के अज और अज के पुत्र महाराज दशरथ हुए ॥ 1 ॥

तस्यापि भगवानेष, साक्षाद् ब्रह्ममयो हरिः ।
अं(म्)शां(म्)शेन चतुर्धागात्, पुत्रत्वं(म्) प्रार्थितः(स्) सुरैः ।
रामलक्ष्मणभरत- शत्रुघ्ना इति सं(ञ्)ज्ञया ॥ 2॥

चतुर् + धागात्

देवताओं की प्रार्थना से साक्षात् परमब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीहरि ही अपने अंशांश से चार रूप धारण करके राजा दशरथ के पुत्र हुए। उनके नाम थे-राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ॥ 2 ॥

तस्यानुचरितं(म्) राजन्- नृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
श्रुतं(म्) हि वर्णितं(म्) भूरि, त्वया सीतापतेर्मुहुः ॥ 3॥

नृषिभिस्+ तत्त्व+ दर्शिभिः

परीक्षित् । सीतापति भगवान् श्रीराम का चरित्र तो तत्त्वदर्शी ऋषियों ने बहुत कुछ वर्णन किया है और तुमने अनेक बार उसे सुना भी है ॥ 3 ॥

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं(म्) पद्मपद्भ्यां(म्) प्रियायाः(फ्)
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां(म्) मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम् ।
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः(फ्) प्रियविरहरुषा-ऽऽरोपितभ्रूविजृम्भ-
त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः(ख्) खलदवदहनः(ख्) कोसलेन्द्रोऽवतान्नः ॥ 4॥

पद्म+ पद्भ्यां(म्), पाणि+ स्पर्शा+ क्षमाभ्यां(म्), वैरूप्याच्+ छूर्पणख्याः(फ्)

रोपितभ्रू+ विजृम्भ, त्रस्ताब्धिर्+ बद्ध सेतुः(ख्)

भगवान् श्रीराम ने अपने पिता राजा दशरथ के सत्यकी रक्षा के लिये राजपाट छोड़ दिया और वे वन-वन में फिरते रहे। उनके चरणकमल इतने सुकुमार थे कि परम सुकुमारी श्रीजानकी जी के करकमलों का स्पर्श भी उनसे सहन नहीं होता था। वे ही चरण जब वन में चलते-चलते थक जाते, तब हनूमान् और लक्ष्मण उन्हें दबा दबाकर उनकी थकावट मिटाते। शूर्पणखा को नाक-कान काटकर विरूप कर देनेके कारण उन्हें अपनी प्रियतमा श्रीजानकीजी का वियोग भी सहना पड़ा। इस वियोग के कारण क्रोधवश उनकी भौंहे तन गयीं, जिन्हें देखकर समुद्रतक भयभीत हो गया। इसके बाद उन्होंने समुद्र पर पुल बांधा और लङ्का में जाकर दुष्ट राक्षसों के जंगल को दावानि के समान दग्ध कर दिया। वे कोसलनरेश हमारी रक्षा करें ॥ 4 ॥

विश्वामित्राध्वरे येन, मारीचाद्या निशाचराः ।
पश्यतो लक्ष्मणस्यैव, हता नैर्ऋतपुं(ङ्)गवाः ॥ 5॥

नैर्+ ऋत+ पुं(ङ्)गवाः

भगवान् श्रीराम ने विश्वामित्र के यज्ञ में लक्ष्मण के सामने ही मारीच आदि राक्षसों को मार डाला। वे सब बड़े-बड़े राक्षसो की गिनती में थे ॥ 5 ॥

यो लोकवीरसमितौ धनुरैशमुग्रं(म्)
सीतास्वयं(वँ)वरगृहे त्रिशतोपनीतम् ।
आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं(म्)
सज्जीकृतं(न्) नृप विकृष्य बभञ्ज मध्ये ॥ 6॥

लोकवी+ रसमितौ, त्रिशतो+ पनीतम्, इवेक्षु+ यष्टिं(म्)

परीक्षित्! जनकपुर में सीताजी का स्वयंवर हो रहा था। संसार के चुने हुए वीरों की सभा में भगवान् शङ्कर का वह भयङ्कर धनुष रखा हुआ था। वह इतना भारी था कि तीन सौ वीर बड़ी कठिनाई से उसे स्वयंवर सभा में ला सके थे। भगवान् श्रीराम ने उस धनुष को बात की जात में उठाकर उसपर डोरी चढ़ा दी और खींच कर बीचोबीच से उसके दो टुकड़े कर दिये-ठीक वैसे ही जैसे हाथी का बच्चा खेलते-खेलते ईख तोड़ डाले ॥ 6 ॥

जित्वानुरूपगुणशीलवयोऽङ्गरूपां(म्),

सीताभिधां(म्) श्रियमुरस्यभिलब्धमानाम् ।

मार्गे व्रजन् भृगुपतेर्व्यनयत् प्ररूढं(न्)

दर्पं(म्) महीमकृत यस्त्रिरराजबीजाम् ॥ 7॥

जित्वा+ नुरू+ पगुणशी+ लवयोऽङ्गरूपां(म्), श्रियमुरस् + यभिलब्ध+ मानाम्,

भृगुपतेर् + व्यनयत् , यस्+ त्रिररा+ जबीजाम्

भगवान् ने जिन्हें अपने वक्षःस्थलपर स्थान देकर सम्मानित किया है, वे श्रीलक्ष्मी जी ही सीता के नाम से जनकपुर में अवतीर्ण हुई थीं। वे गुण, शील, अवस्था, शरीर की गठन और सौन्दर्य में सर्वथा भगवान् श्रीराम के अनुरूप थीं। भगवान् ने धनुष तोड़कर उन्हें प्राप्त कर लिया। अयोध्या को लौटते समय मार्ग में उन परशुराम जी से भेंट हुई, जिन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को राजवंश के बीज से भी रहित कर दिया था। भगवान् ने उनके बढ़े हुए गर्व को नष्ट कर दिया ॥ 7 ॥

यः(स्) सत्यपाशपरिवीतपितुर्निदेशं(म्)

स्त्रैणस्य चापि शिरसा जगृहे सभार्यः ।

राज्यं(म्) श्रियं(म्) प्रणयिनः(स्) सुहृदो निवासं(न्)

त्यक्त्वा ययौ वनमसूनिव मुक्तसं(ङ्)गः ॥ 8॥

सत्यपा+ शपरिवी+ तपितुर्+ निदेशं(म्), वनमसू+ निव

इसके बाद पिता के वचन को सत्य करने के लिये उन्होंने वनवास स्वीकार किया। यद्यपि महाराज दशरथ ने अपनी पत्नी के अधीन होकर ही उसे वैसा वचन दिया था, फिर भी वे सत्य के बन्धन में बंध गये थे। इसलिये भगवान् ने अपने पिता की आज्ञा शिरोधार्य की। उन्होंने प्राणों के समान प्यारे राज्य लक्ष्मी, प्रेमी, हितैषी मित्र और महलों को वैसे ही छोड़कर अपनी पत्नी के साथ यात्रा की, जैसे मुक्त संग योगी प्राणों को छोड़ देता है॥ 8 ॥

रक्षः(स्)स्वसुर्व्यकृत रूपमशुद्धबुद्धेस्-

तस्याः(ख्) खरत्रिशिरदूषणमुख्यबन्धून् ।

जघ्ने चतुर्दशसहस्रमपारणीय-

कोदण्डपाणिरटमान उवास कृच्छ्रम् ॥ 9॥

रक्षः(स्)+ स्वसुर्+ व्यकृत, खरत्रिशिरदू+ षणमुख्य+ बन्धून्,

चतुर्दश+ सहस्र+ मपारणीय, कोदण्ड+ पाणि+ रटमान

वन में पहुँच कर भगवान् ने राक्षसराज रावण की बहिन शूर्पणखा को विरूप कर दिया। क्योंकि उसकी बुद्धि बहुत हो कलुषित, काम वासना के कारण अशुद्ध थी। उसके पक्षपाती खर, दूषण, त्रिशिरा आदि प्रधान प्रधान भाइयों को— जो संख्या में चौदह हजार थे— हाथ में महान् धनुष लेकर भगवान् श्रीराम ने नष्ट कर डाला, और अनेक प्रकार की कठिनाइयों से परिपूर्ण वन में वे इधर-उधर विचरते हुए निवास करते रहे ॥ 9 ॥

सीताकथाश्रवणदीपितहृच्छयेन

सृष्टं(वँ) विलोक्य नृपते दशकन्धरेण ।

जघ्नेऽद्भुतैणवपुषाऽऽश्रमतोऽपकृष्टो

मारीचमाशु विशिखेन यथा कमुग्रः ॥ 10॥

सीताकथा+ श्रवणदी+ पितहृच्छयेन, जघ्नेऽद्+ भुतै+ णवपुषाऽऽ+ श्रमतोऽ+ पकृष्टो, मारी+ चमाशु

परीक्षित् ! जब रावण ने सीताजी के रूप, गुण, सौन्दर्य आदि की बात सुनी तो उसका हृदय काम वासना से आतुर हो गया। उसने अद्भुत हरिन के वेष में मारीच को उनकी पर्णकुटी के पास भेजा। वह धीरे-धीरे भगवान् को वहाँ से दूर ले गया। अन्त में भगवान् ने अपने बाण से उसे बात-की- बात में वैसे ही मार डाला, जैसे दक्षप्रजापति को वीरभद्र ने मारा था ॥ 10 ॥

रक्षोऽधमेन वृकवद् विपिनेऽसमक्षं(वँ),

वैदेहराजदुहितर्यपयापितायाम् ।

भ्रात्रा वने कृपणवत् प्रियया वियुक्तः(स्),

स्त्रीसं(ङ्)गिनां(ङ्) गतिमितिं प्रथयं(म्)श्चचार ॥ 11॥

विपिनेऽ+ समक्षं(वँ), वैदेह+ राजदुहितर्+ यपया+ पितायाम्

जब भगवान् श्रीराम जंगल में दूर निकल गये, तब नीच राक्षस रावण ने भेड़िये के समान विदेह नन्दिनी सुकुमारी श्रीसीताजी को हर लिया। तदनन्तर वे अपनी प्राणप्रिया सीताजी से बिछुड़कर अपने भाई लक्ष्मण के साथ वन-वन में दीन की भाँति घूमने लगे। और इस प्रकार उन्होंने यह शिक्षा दी कि 'जो स्त्रियों में आसक्ति रखते हैं, उनकी यही गति होती है' ॥ 11 ॥

दग्ध्वाऽऽत्मकृत्यहतकृत्यमहन् कबन्धं(म्),

सख्यं(वँ) विधाय कपिभिर्दयितागतिं(न्) तैः ।

बुद्ध्वाथ वालिनि हते प्लवगेन्द्रसैन्यैर्-

वेलामगात् स मनुजोऽजभवार्चिताङ्घ्रिः ॥ 12॥

दग्ध्वाऽऽत्म+ कृत्य+ हतकृत्य+ महन्, कपिभिर्+ दयितागतिं(न्), मनुजोऽ+ जभवार्+ चिताङ्घ्रिः

इसके बाद भगवान् ने उस जटायु का दाह संस्कार किया, जिस के सारे कर्मबन्धन भगवत्सेवारूप कर्म से पहले ही भस्म हो चुके थे। फिर भगवान् ने कबन्ध का संहार किया और इसके अनन्तर सुग्रीव आदि वानरों से मित्रता करके वालि का वध किया, तदनन्तर वानरों के द्वारा अपनी प्राणप्रिया का पता लगवाया। ब्रह्मा और शङ्कर जिनके चरणों की वन्दना करते हैं, वे भगवान् श्रीराम मनुष्य की-सी लीला करते हुए बंदरों की सेना साथ समुद्र तटपर पहुँचे ॥ 12 ॥

यद्रोषविभ्रमविवृत्तकटाक्षपात-

सं(म्)भ्रान्तनक्रमकरो भयगीर्णघोषः ।

सिन्धुः(श्) शिरस्यर्हणं(म्) परिगृह्य रूपी

पादारविन्दमुपगम्य बभाष एतत् ॥ 13॥

यद्रोषवि+ भ्रमविवृत्त+ कटाक्षपात, सं(म्)भ्रान्+ तनक्रमकरो

भगवान् ने क्रोध की लीला करते हुए अपनी उग्र एवं टेढ़ी नजर समुद्र पर डाली। उसी समय समुद्र के बड़े-बड़े मगर और मच्छ खलबला उठे डर जाने के कारण समुद्र की सारी गर्जना शान्त हो गयी। तब समुद्र शरीर धारी बनकर और अपने सिर पर बहुत-सी भेंटें लेकर भगवान के चरणकमलों की शरण में आया और इस प्रकार कहने लगा ॥ 13 ॥

नं त्वां(वँ) वयं(ञ्) जडधियो नु विदाम भूमन्

कूटस्थमादिपुरुषं(ञ्) जगतामधीशम् ।

यत्सत्त्वतः(स्) सुरगणा रजसः(फ्) प्रजेशा

मन्योश्च भूतपतयः(स्) स भवान् गुणेशः ॥ 14॥

कूटस्थमा+ दिपुरुषं(ञ्)

'अनन्त हम मूर्ख हैं; इसलिये आपके वास्तविक स्वरूप को नहीं जानते। जानें भी कैसे ? आप समस्त जगत के एकमात्र स्वामी, आदिकारण एवं जगत के समस्त परिवर्तनों में एकरस रहने वाले हैं। आप समस्त गुणों के स्वामी हैं। इसलिये जब आप सत्त्वगुण को स्वीकार कर लेते हैं तब देवताओं की, रजोगुण को स्वीकार कर लेते हैं तब प्रजापतियों की और तमोगुण को स्वीकार कर लेते हैं तब आपके क्रोध से रुद्रगण की उत्पत्ति होती है ॥ 14 ॥

कामं(म्) प्रयाहि जहि विश्रवसोऽवमेहं(न्)

त्रैलोक्यरावणमवाप्नुहि वीर पत्नीम् ।

बध्नीहि सेतुमिह ते यशसो वितत्यै

गायन्ति दिग्विजयिनो यमुपेत्य भूपाः ॥ 15॥

त्रैलोक्य+ रावणमवाप् + नुहि

वीरशिरोमणे ! आप अपनी इच्छा के अनुसार मुझे पार कर जाइये और त्रिलोकी को रुलाने वाले विश्रवा कुपूत रावण को मारकर अपनी पत्नी को फिर से प्राप्त कीजिये। परन्तु आपसे मेरी एक प्रार्थना है। आप यहाँ मुझपर एक पुल बाँध दीजिये। इस से आपके यशका विस्तार होगा और आगे चलकर जब बड़े-बड़े नरपति दिग्विजय करते हुए यहाँ आयेंगे, तब वे आपके यशका गान करेंगे ॥ 15 ॥

बद्ध्वोदधौ रघुपतिर्विविधाद्रिकूटैः(स्)

सेतुं(ङ्) कपीन्द्रकरकम्पितभूरुहाङ्गैः ।

सुग्रीवनीलहनुमत्प्रमुखैरनीकैर्-

लङ्कां(वँ)विभीषणदृशाऽऽविशदग्रदग्धाम् ॥ 16॥

रघुपतिर्+ विविधा+ द्रिकूटैः(स्), कपीन्द्र+ करकम्पित+ भूरुहाङ्गैः

सुग्रीवनी+ लहनुमत्+ प्रमुखै+ रनीकैर्, लङ्कां(वँ)+ विभीषणदृशाऽऽ+ विशदग्र+ दग्धाम्

भगवान् श्रीरामजी ने अनेकानेक पर्वतों के शिखरो से समुद्र पर पुल बांधा। जब बड़े-बड़े बन्दर अपने हाथों से पर्वत उठा-उठा कर लाते थे, तब उनके वृक्ष और बड़ी-बड़ी चट्टानें थर-थर काँपने लगती थीं। इसके बाद विभीषण की सलाह से भगवान् ने सुग्रीव, नील, हनूमान् आदि प्रमुख वीरों और वानरी सेना के साथ लङ्का में प्रवेश किया। वह तो श्रीहनूमान जी के द्वारा पहले ही जलायी जा चुकी थी ॥ 16 ॥

सा वानरेन्द्रबलरुद्धविहारकोष्ठ-

श्रीद्वारगोपुरसदोवलभीविटं(ङ्)का ।

निर्भज्यमानधिषणध्वजहेमकुम्भ-

शृं(ङ्)गाटका गजकुलैर्ह्रदिनीव घूर्णा ॥ 17॥

वानरेन्द्र+ बलरुद्ध+ विहार+ कोष्ठ, श्रीद्वारगो+ पुरसदो+ वलभी+ विटं(ङ्)का

निर्भज्यमा+ नधिषणध्+ वजहे+ मकुम्भ, गजकुलैर्+ ह्रदिनीव

उस समय वानरराज की सेना ने लङ्का के सैर करने और खेलने के स्थान, अन्न के गोदाम, खजाने, दरवाजे, फाटक, सभा भवन, छज्जे और पक्षियों के रहने के स्थान को घेर लिया। उन्होंने वेदी, ध्वजाएँ सोने के कलश और चौराहे तोड़-फोड़ डाले। उस समय लङ्का ऐसी मालूम पड़ रही थी जैसे झुंड के झुंड हाथियों ने किसी नदी को मथ डाला हो ॥ 17 ॥

रक्षः(फ्)पतिस्तदवलोक्य निकुम्भकुम्भ-

धूम्राक्षदुर्मुखसुरान्तनरान्तकादीन् ।

पुत्रं(म्) प्रहस्तमतिकायविकम्पनादीन्

सर्वानुगान् समहिनोदथ कुम्भकर्णम् ॥ 18॥

रक्षः(फ्)पतिस्+ तदवलोक्य, धूम्राक्षदुर्+ मुखसुरान्+ तनरान्+ तकादीन्

प्रहस्त+ मतिकाय+ विकम्प+ नादीन्

यह देख कर राक्षसराज रावण ने निकुम्भ, कुम्भ, धूम्राक्ष, दुर्मुख, सुरान्तक, नरान्तक, प्रहस्त, अतिकाय, विकम्पन आदि अपने सब अनुचरों, पुत्र मेघनाद और अन्त में भाई कुम्भकर्ण को भी युद्ध करने के लिये भेजा ॥ 18 ॥

तां(यँ) यातुधानपृतनामसिशूलचाप-

प्रासर्ष्टिशक्तिशरतोमरखड्गदुर्गाम् ।

सुग्रीवलक्ष्मणमरुत्सुतगन्धमाद-

नीलां(ङ्)गदर्क्षपनसादिभिरन्वितोऽगात् ॥ 19॥

यातुधा+ नपृतना+ मसिशूलचाप, प्रासर्ष्टि+ शक्तिशरतो+ मरखड्+ गदुर्गाम्

सुग्रीव+ लक्ष्मणमरुत्+ सुतगन्धमाद, नीलां(ङ्)गदर्+ क्षपनसा+ दिभिरन्+ वितोऽगात्

राक्षसों की वह विशाल सेना तलवार, त्रिशूल, धनुष, प्रास, ऋष्टि, शक्ति, बाण, भाले, खड्ग आदि शस्त्र अस्त्रों से सुरक्षित और अत्यन्त दुर्गम थी। भगवान् श्रीराम ने सुग्रीव, लक्ष्मण, हनूमान् गन्धमादन, नील, अङ्गद, जाम्बवान् और पनस आदि वीरों को अपने साथ लेकर राक्षसों की सेना का सामना किया ॥ 19 ॥

तेऽनीकपा रघुपतेरभिपत्य सर्वे

द्वन्द्वं(वँ) वरूथमिभपत्तिरथाश्वयोधैः ।

जघ्नुर्द्रुमैर्गिरिगदेषुभिरं(ङ्)गदाद्याः(स्)

सीताभिमर्शहतमं(ङ्)गलरावणेशान् ॥ 20॥

वरू+थमिभपत्ति+ रथाश्+ वयोधैः, जघ्नुर्+ द्रुमैर्+ गिरिगदे+ षुभिरं(ङ्)गदाद्याः(स्)

सीताभिमर्+ शहतमं(ङ्)गलरा+ वणेशान्

रघुवंश शिरोमणि भगवान् श्रीराम के अङ्गद आदि सब सेना पति राक्षसों की चतुरङ्गिणी सेना - हाथी, रथ, घुड़सवार और पैदलों के साथ द्वन्द्वयुद्ध की रीति से भिड़ गये और राक्षसों को वृक्ष, पर्वतशिखर, गदा और बाणों से मारने लगे। उनका मारा जाना तो स्वाभाविक ही था। क्योंकि वे उसी रावणके अनुचर थे, जिसका मङ्गल श्रीसीताजी को स्पर्श करने के कारण पहले ही नष्ट हो चुका था॥ 20 ॥

रक्षः(फ्)पतिः(स्) स्वबलनष्टिमवेक्ष्य रुष्ट

आरुह्य यानकमथाभिससार रामम् ।

स्वः(स्)स्यन्दने द्युमति मातलिनोपनीते

विभ्राजमानमहनन्निशितैः क्षुरप्रैः ॥ 21॥

स्वबलनष्+ टिमवेक्ष्य, यानकमथा+ भिससार,

मातलिनो+पनीते, विभ्राजमा+ नमहनन्+ निशितैः

जब राक्षसराज रावण ने देखा कि मेरी सेना का तो नाश हुआ जा रहा है, तब वह क्रोध में भरकर पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो भगवान् श्रीराम के सामने आया उस समय इन्द्र का सारथि मातलि बड़ा ही तेजस्वी दिव्य रथ लेकर आया और उसपर भगवान् श्रीरामजी विराजमान हुए। रावण अपने तीखे बाणों से उनपर प्रहार करने लगा ॥ 21 ॥

रामस्तमाह पुरुषादपुरीष यन्नः(ख्)

कान्तासमक्षमसतापहृता श्वत् ते ।

त्यक्तत्रपस्य फलमद्य जुगुप्सितस्य

यच्छामि काल इव कर्तुरलं(ङ्)घ्यवीर्यः॥ 22॥

कान्ता+ समक्ष+ मसता+ पहृता, जुगुप् + सितस्य

भगवान् श्रीरामजी ने रावण से कहा -'नीच राक्षस! तुम कुत्ते की तरह हमारी अनुपस्थिति में हमारी प्राणप्रिया पत्नी को हरये लाए ! तुमने तो दुष्टता की हद कर दी ! तुम्हारे जैसा निर्लज्ज तथा निन्दनीय और कौन होगा। जैसे काल को कोई टाल नहीं सकता — कर्तापन के अभिमानी को वह फल दिये बिना रह हुए नहीं सकता, वैसे ही आज मैं तुम्हें तुम्हारी करनी का फल चखाता हूँ' ॥ 22 ॥

एवं(ङ्) क्षिपन् धनुषि सन्धितमुत्ससर्ज
बाणं(म्) स वज्रमिव तद्धृदयं(म्) बिभेद ।
सोऽसृग् वमन् दशमुखैर्न्यपतद् विमानाद्-
धाहेति जल्पति जने सुकृतीव रिक्तः ॥ 23॥

सन्धितमुत्+ ससर्ज, दशमुखैर्+ न्यपतद्

इस प्रकार रावण को फट कारते भगवान् श्रीरामने अपने धनुषपर चढ़ाया हुआ बाण उसपर छोड़ा। उस वाण ने वज्र के समान उस के हृदय को विदीर्ण कर दिया। वह अपने दसों मुखों से खून उगलता हुआ विमान से गिर पड़ा-ठीक वैसे ही, जैसे पुण्यात्मालोग भोग समाप्त होने पर स्वर्ग से गिर पड़ते हैं। उस समय उसके पुरजन-परिजन 'हाय हाय' करके चिल्ला ने लगे ॥ 23 ॥

ततो निष्क्रम्य लं(ङ्)काया, यातुधान्यः(स्) सहस्रशः ।
मन्दोदर्या समं(न्) तस्मिन्, प्ररुदत्य उपाद्रवन् ॥ 24॥

तदनन्तर हजारों राक्षसियाँ मन्दोदरी के साथ रोती हुई लंका से निकल पड़ी और रणभूमि में आयीं ॥ 24 ॥

स्वान् स्वान् बन्धून् परिष्वज्य, लक्ष्मणेषुभिरर्दितान् ।
रुरुदुः(स्) सुस्वरं(न्) दीना, घ्नन्त्य आत्मानमात्मना ॥ 25॥

लक्ष्मणे+ षुभिरर्+ दितान्

उन्होंने देखा कि उनके स्वजन सम्बन्धी लक्ष्मणजी के वाणों से छित्र भिन्न होकर पड़े हुए हैं। वे अपने हाथों अपनी छाती पीट पीटकर और अपने सगे-सम्बन्धियों को हृदय से लगा लगाकर ऊँचे स्वरसे विलाप करने लगीं ॥ 25 ॥

हा हताः(स्) स्म वयं(न्) नाथ, लोकरावण रावण ।
कं(यँ) यायाच्छरणं(लँ) लं(ङ्)का, त्वद्विहीना परार्दिता ॥ 26॥

यायाच्+ छरणं(लँ),त्वद्+ विहीना

हाय-हाय ! स्वामी ! आज हम सब बेमौत मारी गयीं। एक दिन वह था, जब आपके भय से समस्त लोकों में त्राहि-त्राहि मच जाती थी। आज वह दिन आ पहुँचा कि आपके न रहने से हमारे शत्रु लंका की दुर्दशा कर रहे हैं और यह प्रश्न उठ रहा है कि अब लङ्का किस के अधीन रहेगी ॥ 26 ॥

नैवं(वँ) वेद महाभाग, भवान् कामवशं(ङ्) गतः ।
तेजोऽनुभावं(म्) सीताया, येन नीतो दशामिमाम् ॥ 27॥

आप सब प्रकार से सम्पन्न थे, किसी भी बात की कमी न थी। परन्तु आप काम के वश हो गये और यह नहीं सोचा कि सीताजी कितनी तेजस्विनी हैं और उनका कितना प्रभाव है। आपकी यही भूल आपकी इस दुर्दशाका कारण बन गयी ॥ 27 ॥

कृतैषा विधवा लं(ङ्)का, वयं(ञ्) च कुलनन्दन ।

देहः(ख्) कृतोऽन्नं(ङ्) गृध्राणा- मात्मा नरकहेतवे ॥ 28॥

कभी आपके कामों से हम सब और समस्त राक्षसवंश आनन्दित होता था और आज हम सब तथा यह सारी लङ्का नगरी विधवा हो गयी। आपका वह शरीर, जिसके लिये आपने सब कुछ कर डाला, आज गीधों का आहार बन रहा है और अपने आत्मा को आपने नरक का अधिकारी बना डाला। यह सब आपकी ही नासमझी और कामुकता का फल है ॥ 28 ॥

श्रीशुक उवाच

स्वानां(वँ) विभीषणश्चक्रे, कोसलेन्द्रानुमोदितः ।

पितृमेधविधानेन, यदुक्तं(म्) साम्परायिकम् ॥ 29॥

विभीषणश् + चक्रे, कोसलेन्+ द्रानुमोदितः,

श्रीशुकदेवजी कहते हैं-परीक्षित्! कोसलाधीश भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से विभीषण ने अपने स्वजन सम्बन्धियों का पितृयज्ञ की विधि से शास्त्र के अनुसार अन्त्येष्टि कर्म किया ॥ 29 ॥

ततो ददर्श भगवा- नशोकवनिकाश्रमे ।

क्षामां(म्) स्वविरहव्याधिं(म्), शिं(म्)शपामूलमास्थिताम् ॥ 30॥

शिं(म्)शपा+ मूलमास् + थिताम्

इसके बाद भगवान् श्रीराम ने अशोक वाटिका के आश्रम मे अशोक वृक्ष के नीचे बैठी हुई श्रीसीताजी को देखा। वे उन्हींके विरहकी व्याधिसे पीड़ित एवं अत्यन्त दुर्बल हो रही थीं ॥ 30 ॥

रामः(फ्) प्रियतमां(म्) भार्यां(न्), दीनां(वँ) वीक्ष्यान्वकम्पत ।

आत्मसं(न्)दर्शनाह्लाद-विकसन्मुखपं(ङ्)कजाम् ॥ 31॥

वीक्ष्यान्+ वकम्पत, आत्म+ सं(न्)दर्शनाह्लाद, विकसन्+ मुखपं(ङ्)कजाम्

अपनी प्राणप्रिया अर्धाङ्गिनी श्रीसीताजी को अत्यन्त दीन अवस्था में देखकर श्रीराम का हृदय प्रेम और कृपा से भर आया। इधर भगवान् का दर्शन पाकर सीताजी का हृदय प्रेम और आनन्द से परिपूर्ण हो गया, उनका मुखकमल खिल उठा ॥ 31 ॥

आरोप्यारुरुहे यानं(म्), भ्रातृभ्यां(म्) हनुमद्युतः ।

विभीषणाय भगवान्, दत्त्वा रक्षोगणेशताम् ॥ 32॥

लं(ङ्)कामायुश्च कल्पान्तं(यँ), ययौ चीर्णव्रतः(फ्) पुरीम् ।

अवकीर्यमाणः(ख्) कुसुमैर्- लोकपालार्पितैः(फ्) पथि ॥ 33॥

लोक+ पालार्+ पितैः(फ्)

भगवान् ने विभीषण को राक्षसों का स्वामित्व, लङ्कापुरी का राज्य और एक कल्पकी आयु दी और इसके बाद पहले सीताजी को विमानपर बैठाकर अपने दोनों भाई लक्ष्मण तथा सुग्रीव एवं सेवक हनूमान जी के साथ स्वयं भी विमानपर सवार हुए। इस प्रकार चौदह वर्षका व्रत पूरा हो जानेपर उन्होंने अपने नगर की यात्रा की। उस समय मार्ग में ब्रह्मा आदि लोकपालगण उनपर बड़े प्रेम से पुष्पों की वर्षा कर रहे थे॥ 32-33 ॥

उपगीयमानचरितः(श्), शतधृत्यादिभिर्मुदा ।

गोमूत्रयावकं(म्) श्रुत्वा, भ्रातरं(वँ) वल्कलाम्बरम् ॥ 34॥

शतधृत्या+ दिभिर्मुदा, वल्कलाम्+ बरम्

इधर तो ब्रह्मा आदि बड़े आनन्द से भगवान् की लीलाओं का गान कर रहे थे और उधर जब भगवान् को यह मालूम हुआ कि भरतजी केवल गोमूत्र में पकाया हुआ जौ का दलिया खाते हैं, वल्कल पहनते हैं और पृथ्वीपर डाभ बिछाकर सोते हैं एवं उन्होंने जटाएँ बढ़ा रखी हैं, तब वे बहुत दुःखी हुए॥ 34॥

महाकारुणिकोऽतप्यज्- जटिलं(म्) स्थण्डिलेशयम् ।

भरतः(फ्) प्राप्तमाकर्ण्य, पौरामात्यपुरोहितैः ॥ 35॥

महाका+ रुणिकोऽ+ तप्यज्, पौरामात् + यपुरोहितैः

पादुके शिरसि न्यस्य, रामं(म्) प्रत्युद्यतोऽग्रजम् ।

नन्दिग्रामात् स्वशिबिराद्, गीतवादित्रनिः(स्)स्वनैः ॥ 36॥

प्रत्युद् + यतोऽ+ ग्रजम्, गीतवा+ दित्रनिः(स्)स्वनैः

उनकी दशाका स्मरण कर परम करुणाशील भगवान् का हृदय भर आया। जब भरत को मालूम हुआ कि मेरे बड़े भाई भगवान् श्रीरामजी आ रहे हैं, तब वे पुरवासी, मन्त्री और पुरोहितों को साथ लेकर एवं भगवान् की पादुकाएँ सिरपर रखकर उनकी अगवानी के लिये चले। जब भरतजी अपने रहने के स्थान नन्दिग्राम से चले, तब लोग उनके साथ-साथ मङ्गलगान करते, बाजे बजाते चलने लगे॥ 35-36 ॥

ब्रह्मघोषेण च मुहुः(फ्), पठद्भिर्ब्रह्मवादिभिः ।

स्वर्णकक्षपताकाभिर् - हैमैश्चित्रध्वजै रथैः ॥ 37॥

पठद्भिर्+ ब्रह्मवादिभिः, स्वर्णकक्ष+ पताकाभिर्, हैमैश्+ चित्रध्वजै

सदश्वै रुक्मसन्नाहैर् - भटैः(फ्) पुरटवर्मभिः ।

श्रेणीभिर्वारमुख्याभिर्- भृत्यैश्चैव पदानुगैः ॥ 38॥

रुक्मसन्+ नाहैर्, श्रेणी+ भिर्वा+ रमुख्याभिर्, भृत्यैश्+ चैव

पारमेष्ठ्यान्युपादाय, पण्यान्युच्चावचानि च ।

पादयोर्न्यपतत् प्रेम्णा, प्रक्लिन्नहृदयेक्षणः ॥ 39॥

पारमेष्ठ्यान्+ युपादाय, पण्यान्+ युच्चा+ वचानि, पादयोर्+ न्यपतत्, प्रक्लिन्+ नहृदयेक्षणः

वेदवादी ब्राह्मण बार-बार वेदमन्त्रों का उच्चारण करने लगे और उसकी ध्वनि चारों ओर गूँजने लगी। सुनहरी कामदार पताकाएँ फहराने लगीं। सोने से मढ़े हुए तथा रंग-बिरंगी ध्वजाओं से सजे हुए रथ, सुनहले साज से सजाये हुए सुन्दर घोड़े तथा सोने के कवच पहने हुए सैनिक उनके साथ-साथ चलने लगे। सेठ साहूकार, श्रेष्ठ वाराङ्गनाएँ, पैदल चलनेवाले सेवक और महाराजाओंके योग्य छोटी-बड़ी सभी वस्तुएँ उनके साथ चल रही थीं। भगवान को देखते ही प्रेम के उद्रेक से भरतजीका हृदय गद्गद हो गया, नेत्रोंमें आँसू छलक आये, वे भगवान के चरणोंपर गिर पड़े ॥ 37-39 ॥

पादुके न्यस्य पुरतः(फ्), प्रां(ञ्)जलिर्बाष्पलोचनः ।

तमाश्लिष्य चिरं(न्) दोर्भ्यां(म्), स्नापयन् नेत्रजैर्जलैः ॥ 40॥

प्रां(ञ्)जलिर्+ बाष्प+ लोचनः, नेत्रजैर्+ जलैः

उन्होंने प्रभु के सामने उनकी पादुकाएँ रख दीं और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। नेत्रों से आँसू की धारा बहती जा रही थी। भगवान ने अपने दोनों हाथों से पकड़कर बहुत देरतक भरतजी को हृदय से लगाये रखा । भगवान के नेत्रजल से भरतजी का स्नान हो गया ॥ 40 ॥

रामो लक्ष्मणसीताभ्यां(वँ), विप्रेभ्यो येऽर्हसत्तमाः ।

तेभ्यः(स्) स्वयं(न्) नमश्चक्रे, प्रजाभिश्च नमस्कृतः ॥ 41॥

इसके बाद सीताजी और लक्ष्मणजी के साथ भगवान् श्रीरामजी ने ब्राह्मण और पूजनीय गुरुजनों को नमस्कार किया तथा सारी प्रजा ने बड़े प्रेम से सिर झुकाकर भगवान् के चरणों में प्रणाम किया ॥ 41 ॥

धुन्वन्त उत्तरासं(ङ्)गान्, पतिं(वँ) वीक्ष्य चिरागतम् ।

उत्तराः(ख्) कोसला माल्यैः(ख्), किरन्तो ननृतुर्मुदा ॥ 42॥

उस समय उत्तरकोसल देश की रहने वाली समस्त प्रजा अपने स्वामी भगवान् को बहुत दिनों के बाद आये देख अपने दुपट्टे हिला-हिलाकर पुष्पों की वर्षा करती हुई आनन्द से नाचने लगी ॥ 42 ॥

पादुके भरतोऽगृह्णाच्- चामरव्यजनोत्तमे ।

विभीषणः(स्) ससुग्रीवः(श्), श्वेतच्छत्रं(म्) मरुत्सुतः ॥ 43॥

भरतोऽ+ गृह्णाच्, चामरव् + यजनोत्तमे, श्वेतच्+ छत्रं(म्)

भरतजी ने भगवान् की पादुकाएं लीं, विभीषण ने श्रेष्ठ चँवर, सुग्रीव ने पंखा और श्रीहनुमानजी ने श्वेत छत्र ग्रहण किया ॥ 43 ॥

धनुर्निषं(ङ्)गां(ञ्)छत्रुघ्नः(स्), सीता तीर्थकमण्डलुम् ।

अबिभ्रदं(ङ्)गदः(ख्) खड्गं(म्), हैमं(ञ्) चर्मर्क्षराण् नृप ॥ 44॥

धनुर्निषं(ङ्)गां(ञ्)+ छत्रुघ्नः(स्)

परीक्षित् ! शत्रुजी ने धनुष और तरकस, सीताजी ने तीर्थोंके जल से भरा कमण्डल, अङ्गद ने सोने का खड्ग और जाम्बवान् ने ढाल ले ली ॥ 44 ॥

पुष्पकस्थोऽन्वितः(स्) स्त्रीभिः(स्), स्तूयमानश्च वन्दिभिः ।

विरेजे भगवान् राजन्, ग्रहैश्चन्द्र इवोदितः ॥ 45॥

पुष्पकस् + थोऽन्वितः(स्), स्तूय+ मानश्च, ग्रहैश्+ चन्द्र

इन लोगों के साथ भगवान् पुष्पक विमान पर विराजमान हो गये, चारों तरफ यथास्थान स्त्रियाँ बैठ गयीं, वन्दीजन स्तुति करने लगे। उस समय पुष्पक विमानपर भगवान् श्रीराम की ऐसी शोभा हुई, मानो ग्रहों के साथ चन्द्रमा उदय हो रहे हों ॥ 45 ॥

भ्रातृभिर्नन्दितः(स्) सोऽपि, सोत्सवां(म्) प्राविशत् पुरीम् ।

प्रविश्य राजभवनं(ङ्), गुरुपत्नीः(स्) स्वमातरम् ॥ 46॥

भ्रातृभिर्+ नन्दितः(स्)

गुरून् वयस्यावरजान्, पूजितः(फ्) प्रत्यपूजयत् ।

वैदेही लक्ष्मणश्चैव, यथावत् समुपेयतुः ॥ 47॥

इस प्रकार भगवान् ने भाइयों का अभिनन्दन स्वीकार करके उनके साथ अयोध्यापुरी में प्रवेश किया। उस समय वह पुरी आनन्दोत्सव से परिपूर्ण हो रही थी। राजमहल में प्रवेश करके उन्होंने अपनी माता कौसल्या, अन्य माताओं, गुरुजनों, बराबर के मित्रों और छोटो का यथायोग्य सम्मान किया तथा उनके द्वारा किया हुआ सम्मान स्वीकार किया। श्रीसीताजी और लक्ष्मणजी ने भी भगवान् के साथ-साथ सबके प्रति यथायोग्य व्यवहार किया ॥ 46-47 ॥

पुत्रान् स्वमातरस्तास्तु, प्राणां(म्)स्तन्व इवोत्थिताः ।

आरोप्याङ्केऽभिषिं(ञ्)चन्त्यो, बाष्पौघैर्विजहुः(श्) शुचः ॥ 48॥

स्वमातरस्+ तास्तु, आरोप्याङ्+ केऽभिषिं(ञ्)+ चन्त्यो, बाष्पौघैर्+ विजहुः(श्)

उस समय जैसे मृतक शरीर में प्राणों का सञ्चार हो जाय, वैसे ही माताएँ अपने पुत्रों के आगमन से हर्षित हो उठीं। उन्होंने उनको अपनी गोद में बैठा लिया और अपने आँसुओं से उनका अभिषेक किया। उस समय उनका सारा शोक मिट गया ॥ 48 ॥

जटा निर्मुच्य विधिवत्, कुलवृद्धैः(स्) समं(ङ्) गुरुः ।

अभ्यषिं(ञ्)चद् यथैवेन्द्रं(ञ्), चतुः(स्)सिन्धुजलादिभिः ॥ 49॥

चतुः(स्)सिन्+ धुजलादिभिः

इसके बाद वसिष्ठजी ने दूसरे गुरुजनों के साथ विधिपूर्वक भगवान् की जटा उतरवायी और बृहस्पति ने जैसे इन्द्र का अभिषेक किया था, वैसे ही चारों समुद्रों के जल आदि से उनका अभिषेक किया ॥ 49 ॥

एवं(ङ्) कृतशिरः(स्)स्नानः(स्), सुवासाः(स्) स्रग्व्यलं(ङ्)कृतः ।

स्वलं(ङ्)कृतैः(स्) सुवासोभिर्- भ्रातृभिर्भार्यया बभौ ॥ 50॥

स्रग्+ व्यलं(ङ्)कृतः,भ्रातृभिर्+ भार्यया

इस प्रकार सिर से स्नान करके भगवान् श्रीराम ने सुन्दर वस्त्र, पुष्पमालाएँ और अलङ्कार धारण किये। सभी भाइयों और श्रीजानकीजी ने भी सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और अलङ्कार धारण किये। उनके साथ भगवान् श्रीरामजी अत्यन्त शोभायमान हुए ॥ 50 ॥

अग्रहीदासनं(म्) भ्रात्रा, प्रणिपत्य प्रसादितः ।

प्रजाः(स्) स्वधर्मनिरता, वर्णाश्रमगुणान्विताः ।

जुगोप पितृवद् रामो, मेनिरे पितरं(ञ्) च तम् ॥ 51॥

अग्रही+दासनं(म्)

भरतजी ने उनके चरणों में गिरकर उन्हें प्रसन्न किया और उनके आग्रह करनेपर भगवान् श्रीराम ने राजसिंहासन स्वीकार किया। इसके बाद वे अपने-अपने धर्म में तत्पर तथा वर्णाश्रम के आचार को निभानेवाली प्रजाका पिता के समान पालन करने लगे। उनकी प्रजा भी उन्हें अपना पिता ही मानती थी ॥ 51 ॥

त्रेतायां(वँ) वर्तमानायां(ङ्), कालः(ख्) कृतसमोऽभवत् ।

रामे राजनि धर्मज्ञे, सर्वभूतसुखावहे ॥ 52॥

परीक्षित्! जब समस्त प्राणियों को सुख देनेवाले परम धर्मज्ञ भगवान् श्रीराम राजा हुए तब था तो त्रेतायुग, परन्तु मालूम होता था मानो सत्ययुग ही है ॥ 52 ॥

वनानि नद्यो गिरयो, वर्षाणि द्वीपसिन्धवः ।

सर्वे कामदुघा आसन्, प्रजानां(म्) भरतर्षभ ॥ 53॥

परीक्षित् ! उस समय वन, नदी, पर्वत, वर्ष, द्वीप और समुद्र - सब-के-सब प्रजाके लिये कामधेनु के समान समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाले बन रहे थे ॥ 53 ॥

नाधिव्याधिजराग्लानि- दुःखशोकभयक्लमाः ।

मृत्युश्चानिच्छतां(न्) नासीद्, रामे राजन्यधोक्षजे ॥ 54॥

नाधिव्+ याधिजरा+ ग्लानि, मृत्युश् + चानिच्छतां(न्)

इन्द्रियातीत भगवान् श्रीराम के राज्य करते समय किसी को मानसिक चिन्ता या शारीरिक रोग नहीं होते थे। बुढ़ापा, दुर्बलता, दुःख, शोक, भय और थकावट नाममात्र के लिये भी नहीं थे । यहाँ तक कि जो मरना नहीं चाहते थे, उनकी मृत्यु भी नहीं होती थी ॥ 54 ॥

एकपत्नीव्रतधरो, राजर्षिचरितः(श्) शुचिः ।

स्वधर्मं(ङ्) गृहमेधीयं(म्), शिक्षयन् स्वयमाचरत् ॥ 55॥

एकपत्नी+ व्रतधरो

भगवान् श्रीराम ने एक पत्नी का व्रत धारण कर रखा था, उनके चरित्र अत्यन्त पवित्र एवं राजर्षियों के से थे। वे गृहस्थोचित स्वधर्म की शिक्षा देने के लिये स्वयं उस धर्मका आचरण करते थे ॥ 55 ॥

प्रेम्णानुवृत्त्या शीलेन, प्रश्रयावनता सती ।

धिया ह्रिया च भावज्ञा, भर्तुः(स्) सीताहरन्मनः ॥ 56॥

प्रेम्णा+ नुवृत्त्या

सतीशिरोमणि सीताजी अपने पति के हृदय का भाव जानती रहतीं। वे प्रेम से, सेवा से, शील से, अत्यन्त विनय से तथा अपनी बुद्धि और लज्जा आदि गुणों से अपने पति भगवान् श्रीरामजी का चित्त चुराती रहती थीं ॥ 56 ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म)स्यां(म) सं(म)हितायां(न्)

नवमस्कन्धे रामचरिते दशमोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः ॥